सुहागिनें

मोहन राकेश

हिन्दी ADDA

सुहागिनें

https://www.hindiadda.com/suhaginen/

कमरे में दाख़िल होते ही मनोरमा चौंक गयी। काशी उसकी साड़ी का पल्ला सिर पर लिए ड्रेसिंग टेबल के पास खड़ी थी। उसके होंठ लिपस्टिक से रँगे थे और चेहरे पर बेहद पाउडर पुता था, जिससे उसका साँवला चेहरा डरावना लग रहा था। फिर भी वह मुग्धभाव से शीशे में अपना रूप निहार रही थी। मनोरमा उसे देखते ही आपे से बाहर हो गयी।

"माई," उसने चिल्लाकर कहा, "यह क्या कर रही है?"

काशी ने हड़बड़ाकर साड़ी का पल्ला सिर से हटा दिया और ड्रेसिंग टेबल के पास से हट गयी। मनोरमा के गुस्से के तेवर देखकर पल-भर तो वह सहमी रही, फिर अपने स्वाँग का ध्यान हो आने से हँस दी।

"बहनजी, माफी दे दें," उसने मिन्नत के लहज़े में कहा, "कमरा ठीक कर रही थी, शीशे के सामने आयी, तो ऐसे ही मन कर आया। आप मेरी तनख़ाह में से पैसे काट लेना।"

"तनख़ाह में से पैसे काट लेना!" मनोरमा और भी भडक़ उठी, "पन्द्रह रुपये तनख़ाह है और बेग़म साहब साढ़े छः रुपये लिपस्टिक के कटवाएँगी। कमबख़्त रोज़ प्लेटें तोड़ती है, मैं कुछ नहीं कहती। घी, आटा, चीनी चुराकर ले जाती है, और मैं देखकर भी नहीं देखती। सारा स्टाफ शिकायत करता है, कुछ काम नहीं करती, किसी का कहा नहीं मानती। कमेटी के मेम्बर अलग मेरी जान खाते हैं कि इसे दफ़ा करो, रोज़-रोज़ अपना रोना लेकर हमारे यहाँ आ मरती है। मैं फिर भी तरह दे जाती हूँ कि निकाल दिया, तो दर-बदर मारी-मारी न फिरे-और उसका तू मुझे यह बदला देती है? कमीनी कहीं की!"

उसने बेंत की कुर्सी को इस तरह अपनी तरफ़ खींचा, जैसे उसी ने कोई अपराध किया हो, और उस पर बैठकर माथे को अपने ठंडे हाथ से मल लिया। काशी चुपचाप रही।

"चालीस की होने को आयी, मगर बाँकपन की चाह अब भी बाकी है!" मनोरमा फिर बड़बड़ाई। "छिनाल कहीं की!"

सिर की झटककर उसने आँखें मूँद लीं। दिन-भर की स्कूल की बकझक से दिमाग़ वैसे ही ख़ाली हो रहा था। शरीर भी थका था। वह उस समय पब्लिक लाइब्रेरी से होकर मिलिट्री लाइंज़ का बड़ा राउंड लगाकर आयी थी। निकली यह सोचकर थी कि घूमने से मन में कुछ ताज़गी आएगी, मगर लौटते हुए मन पर अजब भारीपन छा गया था।

क्वार्टर से आधी मील दूर भी जब सूरज डूब गया था। तब कुछ क्षणों के लिए उसे अपना-आप हल्का-हल्का-सा लगा था। हवा, पेड़ों के हिलते पत्ते और अस्तव्यस्त बिखरे बादलों के टुकड़े, हर चीज़ में एक मादक स्पर्श का अनुभव हुआ था। सडक़ पर फैली सन्ध्या की फीकी चाँदनी धीरे-धीरे रंग पकड़ रही थी। वह साड़ी का पल्ला पीछे को कसकर कई क़दम तेज़-तेज़ चल गयी। मगर टैंकी के मोड़ तक पहुँचते-पहुँचते सारा उत्साह ग़ायब हो गया। जब स्कूल के गेट के पास पहुँची तो अन्दर पैर रखने को भी मन नहीं था। मगर उसने किसी तरह मन को बाँधा और लोहे के गेट को हाथ से धकेल दिया। गल्र्ज़ हाई स्कूल की हेड मिस्ट्रेस रात को देर तक सडक़ों पर अकेली कैसे घूम सकती थी? बुझे मन से क्वार्टर की सीढ़ियाँ चढ़ी, तो यह माजरा सामने आ गया।

उसने आँखें खोलीं, तो काशी को उसी तरह खड़ी देखकर उसका गुस्सा और बढ़ गया। जैसे उसे आशा थी कि उसके आँखें बन्द करने और खोलने के बीच काशी सामने से हट जाएगी।

"अब खड़ी क्यों है?" उसने डाँटकर कहा, "जा यहाँ से।"

काशी के चेहरे पर डाँट का कोई ख़ास असर दिखाई नहीं दिया। वह बल्कि पास आकर फ़र्श पर बैठ गयी।

"बहनजी, हाथ जोड़ रही हूँ, माफ़ी दे दो।" उसने मनोरमा के पैर पकड़ लिये। मनोरमा पैर हटाकर कुर्सी से उठ खड़ी हुई।

"तुझसे कह दिया है इस वक़्त चली जा, मुझे तंग न कर।" कहकर वह खिड़की की तरफ़ चली गयी। काशी भी उठकर खड़ी हो गयी।

"चाय बना दूँ?" उसने कहा। "घूमकर थक गयी होंगी।"

"तू जा, मुझे चाय-वाय नहीं चाहिए।"

"तो खाना ले आती हूँ।"

मनोरमा कुछ न कहकर मुँह दूसरी तरफ़ किये रही।

"बहनजी, मिन्नत कर रही हूँ माफ़ी दे दो।"

मनोरमा चुप रही। सिर्फ़ उसने सिर को हाथ से दबा लिया।

"सिर में दर्द है तो सिर दबा देती हूँ।" काशी अपने हाथ पल्ले से पोंछने लगी।

"तुझसे कह दिया है जा, मेरा सिर क्यों खा रही है?" मनोरमा ने चिल्लाकर कहा। काशी चोट खायी-सी पीछे हट गयी। पल-भर अवाक् भाव से मनोरमा की तरफ़ देखती रही। फिर निकलकर बरामदे में चली गयी। वहाँ से कुछ कहने के लिए मुड़ी, मगर बिना कहे चली गयी। जब तक लकड़ी के ज़ीने पर उसके पैरों की आवाज़ सुनाई देती रही, मनोरमा खिड़की के पास खड़ी रही। फिर आकर सिर दबाए बिस्तर पर लेट गयी।

उसे लगा इसमें सारा कसूर उसी का है। और कोई हेड मिस्ट्रेस होती, तो कब का इस औरत को निकालकर बाहर करती। वह जितना उसे तरह देती थी, उतना ही वह उसकी कमज़ोरी का फ़ायदा उठाती थी। उसके बच्चों की भी वह कितनी शैतानियाँ बर्दाश्त करती थी! दिन-भर उसके क्वार्टर की सीढ़ियों पर शोर मचाते रहते थे और स्कूल के कम्पाउंड को गन्दा करते रहते थे। उसने एक बार उन्हें गोलियाँ ला दी थीं। तब से उसे देखते ही उसकी साड़ी से चिपटकर गोलियाँ माँगने लगते थे। उसने कितना चाहा था कि वे साफ़ रहना सीख जाएँ। बड़ी लडक़ी कुन्ती की तो चड्ढियाँ भी उसने अपने हाथ से सी दी थीं। मगर उससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा। वे उसी तरह गन्दे रहते थे और उसी तरह गुलगपाड़ा मचाए रखते थे। पिछली बार इन्स्पेक्शन के दिन उन्होंने कम्पाउंड के फ़र्श पर कोयले से लकीरें खींच दी थीं जिससे दूसरी बार सारे कम्पाउंड की सफ़ाई करानी पड़ी थी। कई बार वे बाहर से आये अतिथियों के सामने जीभें निकाल देते थे। वही थी जो सब बर्दाश्त किए जाती थी।

कुछ देर वह छत की तरफ़ देखती रही। फिर उठकर बरामदे में चली गयी। लकड़ी के बरामदे में अपने ही पैरों की आवाज़ से शरीर में कँपकँपी भर गयी। उसने मुँडेर के खम्भे पर हाथ रख लिया। अहाते में खुली चाँदनी फैली थी। ईंटों के फ़र्श पर सीमेंट की लकीरें एक इन्द्रजाल-सी लगती थीं। स्कूल के बरामदे में पड़े डेस्क-स्टूल और ब्लैकबोर्ड ऐसे लग रहे थे जैसे डरावनी सूरतोंवाले भूत-प्रेत अपने ग़ार के अन्दर से बाहर झाँक रहे हों। देवदार का घना जंगल जैसे ठंडी चाँदनी के स्पर्श से सिहर रहा था। वैसे बिलकुल सन्नाटा था।

काशी के क्वार्टर में इस वक़्त इतनी ख़ामोशी कभी नहीं होती थी। आमतौर पर नौ-दस बजे तक उसके बच्चे चीखते-चिल्लाते रहते थे। उस समय लग रहा था जैसे उस क्वार्टर में कोई रहता ही न हो। रोशनदान में गत्ते लगे रहने से यह भी पता नहीं चल रहा था कि अन्दर लालटेन जल रही है या नहीं। मनोरमा ने खम्भे को और भी अच्छी तरह थाम लिया जैसे पास में उसका वही एक आत्मीय हो जिसे वह अपने प्रति सचेत

रखना चाहती हो। देवदारों के झुरमुटों में से गुज़रती हवा की आवाज़ पास आयी और दूर चली गयी।

"कुन्ती!" मनोरमा ने आवाज़ दी।

उसकी आवाज़ को भी हवा दूर, बहुत दूर ले गयी। जंगल की सरसराहट फिर एक बार बहुत पास चली आयी। काशी के क्वार्टर का दरवाज़ा खुला और कुन्ती अपने में सिमटती-सी बाहर निकली। मनोरमा ने सिर के इशारे से उसे ऊपर आने को कहा। कुन्ती ने एक बार अपने क्वार्टर की तरफ़ देखा और-और भी सिमटती हुई ऊपर चली आयी।

"तेरी माँ क्या कर रही है?" मनोरमा ने कोशिश की कि उसकी आवाज़ रूखी न लगे।

"कुछ भी नहीं।" कुन्ती ने सिर हिलाकर कहा।

"कुछ तो कर रही होगी...।"

"रो रही है।"

"क्यों, रो क्यों रही है?"

कुन्ती चुप रही। मनोरमा भी चुप रहकर नीचे देखने लगी।

"तुम लोगों ने रोटी नहीं खायी?" पल-भर रुककर उसने पूछा।

"रात की बस से बापू को आना है। माँ कहती थी, सब लोग उसके आने पर ही रोटी खाएँगे।"

मनोरमा के सामने जैसे सब कुछ स्पष्ट हो गया। तीन साल के बाद अजुध्या आ रहा है, यह बात काशी उसे बता चुकी थी। तभी आज आईने के सामने जाने पर उसके मन में पाउडर और लिपस्टिक लगाने की इच्छा जाग आयी थी। उसके बच्चे भी शायद इसलिए आज इतने ख़ामोश थे। उनका बापू आ रहा था...बापू...जिसे उन्होंने तीन साल से देखा नहीं था, और जिसे शायद वे पहचानते भी नहीं थे। या शायद पहचानते थे-एक मोटी सख़्त आवाज़ और तमाचे जडऩे वाले हाथों के रूप में...।

"जा, और अपनी माँ को ऊपर भेज दे," उसने कुन्ती का कन्धा थपथपा दिया, "कहना, मैं बुला रही हूँ।"

कुन्ती बाँहें और कन्धे सिकोड़े नीचे चली गयी। थोड़ी देर में काशी ऊपर आ गयी। उसकी आँखें लाल थीं और वह बार-बार पल्ले से अपनी नाक पोंछ रही थी।

"मैंने ज़रा-सी बात कह दी और तू रोने लगी?" मनोरमा ने उसे देखते ही कहा।

"बहनजी, नौकर-मालिक का रिश्ता ही ऐसा है!"

"ग़लत काम करने पर ज़रा भी कुछ कह दो तो तू रोने लगती है!" मनोरमा जैसे किसी टूटी हुई चीज़ को जोडऩे लगी, "जा, अन्दर गुसलख़ाने से हाथ-मुँह धो आ।"

मगर काशी नाक और आँखें पोंछती हुई वहीं खड़ी रही। मनोरमा एक हाथ से दूसरे हाथ की उँगलियाँ मसलने लगी, "अजुध्या आज आ रहा है?" उसने पूछा।

काशी ने सिर हिला दिया।

"कुछ दिन रहेगा या जल्दी चला जाएगा?"

"चिट्ठी में तो यही लिखा है कि ठेका उठाकर चला जाएगा।"

मनोरमा जानती थी कि अजुध्या की ख़ानदानी ज़मीन पर सेब के कुछ पेड़ हैं, जिनका हर साल ठेका उठता है। पिछले साल काशी ने सवा सौ में ठेका दिया था और उससे पिछले साल डेढ़ सौ में। पिछले साल अजुध्या ने उसे बहुत सख़्त चिट्ठी लिखी थी। उसका ख़्याल था कि काशी ठेकेदारों से कुछ पैसे अलग से लेकर अपने पास रख लेती है। इसलिए इस बार काशी ने उसे लिख दिया था कि ठेका उठाने के लिए वह आप ही वहाँ आये; वह रुपये-पैसे के मामले में किसी की बात सुनना नहीं चाहती। पाँच साल हुए अजुध्या ने उसे छोडक़र दूसरी औरत कर ली थी और उसे लेकर पठानकोट में रहता था। वहीं उसने एक छोटी-सी परचून की दुकान डाल रखी थी। काशी को वह ख़र्च के लिए एक पैसा भी नहीं भेजता था।

"सिर्फ़ ठेका उठाने के लिए ही पठानकोट से आ रहा है?" मनोरमा ने ऐसे कहा जैसे सोच कुछ और ही रही हो। "आधे पैसे तो उसके आने-जाने में निकल जाएँगे।"

"मैंने सोचा इस बहाने एक बार यहाँ हो जाएगा, और बच्चों से मिल जाएगा!" काशी की आवाज़ फिर कुछ भीग गयी, "फिर उसकी तसल्ली भी हो जाएगी कि आजकल इन सेवों का डेढ़ सौ कोई नहीं देता।"

"अजीब आदमी है!" मनोरमा हमदर्दी के स्वर में बोली, "अगर सचमुच तू कुछ पैसे रख भी ले तो क्या है? आख़िर तू उसी के बच्चों को तो पाल रही है। चाहिए तो यह कि हर महीने वह तुझे कुछ पैसे भेजा करे। उसकी जगह वह इस तरह की बातें करता है।"

"बहनजी, मर्द के सामने किसी का बस चलता है?" काशी की आवाज़ और भीग गयी।

"तो तू क्यों उससे नहीं कहती कि...?" कहते-कहते मनोरमा ने अपने को रोक लिया। उसे याद आया कि कुछ दिन हुए एक बार सुशील की चिट्ठी आने पर काशी उससे इसी तरह की बातें पूछती रही थी जो उसे अच्छी नहीं लगी थीं। काशी ने कई सवाल पूछे थे-कि बाबूजी आप इतना कमाते हैं तो उससे नौकरी क्यों कराते हैं? कि उनके अभी तक कोई बच्चा-अच्चा क्यों नहीं हुआ? और कि वह अपनी तनख़ाह अपने ही पास रखती है या बाबूजी को भी कुछ भेजती है! तब उसने काशी की बातों को हँसकर टाल दिया था, मगर अपने अन्दर उसे महसूस हुआ था कि उसके मन की कोई बहुत कमज़ोर सतह उन बातों से छू गयी है और उसका मन कई दिन तक उदास रहा था।

"रोटी ले आऊँ?" काशी ने आवाज़ को थोड़ा सहेजकर पूछा।

"नहीं, मुझे अभी भूख नहीं है," मनोरमा ने काफ़ी मुलायम स्वर में कहा जिससे काशी को विश्वास हो जाए कि अब वह बिलकुल नाराज़ नहीं है। "जब भूख लगेगी, मैं ख़ुद निकालकर खा लूँगी। तू जाकर अपने यहाँ का काम पूरा कर ले, अजुध्या अब आनेवाला ही होगा। आख़िरी बस नौ बजे पहुँच जाती है।"

काशी चली गयी तो भी मनोरमा खम्भे का सहारा लिये काफ़ी देर खड़ी रही। हवा तेज़ हो गयी थी। उसे अपने मन में बेचैनी महसूस होने लगी। उसे वे दिन याद आये जब ब्याह के बाद वह और सुशील साथ-साथ पहाड़ों पर घूमा करते थे। उन दिनों लगता था कि उस रोमांच के सामने दुनिया की हर चीज़ हेच है। सुशील उसका हाथ भी छू लेता तो शरीर में एक ज्वार उठ आता था और रोयाँ-रोयाँ उस ज्वार में बह चलता था। देवदार के जंगल की सारी सरसराहट जैसे शरीर में भर जाती थी। अपने को उसके शरीर में खो देने के बाद जब सुशील उससे दूर हटने लगता तो यह उसे और भी पास कर लेना चाहती थी। वह कल्पना में अपने को एक छोटे-से बच्चे को अपने में लिये हुए देखती और पुलकित हो उठती। उसे आश्चर्य होता कि क्या सचमुच एक हिलती-डुलती काया उसके शरीर के अन्दर से जन्म ले सकती है। कितनी बार वह सुशील से कहती थी कि वह आश्चर्य को अपने अन्दर अनुभव करके देखना चाहती है। मगर सुशील इसके हक में नहीं था। वह नहीं चाहता था कि अभी कुछ साल वे एक बच्चे को घर में आने दें। उससे एक तो उसका फिगर ख़राब होने का डर था, फिर उसकी नौकरी का भी

सवाल था। सुशील नहीं चाहता था कि वह नौकरी छोडक़र बस घर-गृहस्थी के लायक ही हो रहे। साल-छ: महीने में सुशील को अपनी बहन उम्मी का ब्याह करना था। उसके दो छोटे भाई कॉलेज में पढ़ रहे थे। उन दिनों उनके लिए एक-एक पैसे की अपनी कीमत थी। वह कम-से-कम चार-पाँच साल एहतियात से चलना चाहता था। हज़ार चाहने पर भी वह सुशील के सामने हठ नहीं कर सकी थी। मगर जब भी सुशील के हाथ उसके शरीर को सहला रहे होते तो एक अज्ञात शिशु उसकी बाँहों में आने के लिए मचलने लगता। वह जैसे उसकी किलकारियाँ सुनती और उसके कोमल शरीर के स्पर्श का अनुभव करती। ऐसे क्षणों में कई बार सुशील का चेहरा उसके लिए बच्चे का चेहरा बन जाता और वह उसे अच्छी तरह अपने साथ सटा लेती। उसका मन होता कि उसे थपथपाए और लोरियाँ दे।

सुशील की चिट्ठी आये इस बार बहुत दिन हो गये थे। उसने उसे लिखा भी था कि वह जल्दी जवाब दिया करे,क्योंकि उसकी चिट्ठी न आने से अपना अकेलापन उसके लिए असह्यï हो जाता है। कई दिनों से वह सोच रही थी कि सुशील को दूसरी चिट्ठी लिखे, मगर स्वाभिमान उसे इससे रोकता था। क्या सुशील को इतनी फुर्सत भी नहीं थी कि उसे कुछ पंक्तियाँ ही लिख दे?

हवा का तेज़ झोंका आया। देवदारों की सरसराहट कई-कई घाटियाँ पार करती दूर के आकाश में जाकर खो गयी। सामने की पहाड़ी के साथ-साथ रोशनी के दो दायरे रेंगते आ रहे थे। शायद पठानकोट से आख़िरी बस आ रही थी। चाँदनी में गेट की मोटी सला$खें चमक रही थीं। हवा धक्के दे-देकर जैसे गेट का ताला तोड़ देना चाहती थी। मनोरमा ने एक लम्बी साँस ली और अन्दर को चल दी। वह अपने को उस समय रोज़ से कहीं ज़्यादा अकेली महसूस कर रही थी।

अगली शाम मनोरमा घूमकर लौटी, तो कम्पाउंड में दाख़िल होते ही ठिठक गयी। काशी के क्वार्टर से बहुत शोर सुनाई दे रहा था। अजुध्या ज़ोर से गाली बकता हुआ काशी को पीट रहा था। काशी गला फाड़-फाडक़र रो रही थी। मनोरमा गुस्से से भन्ना उठी। कमेटी के नियम के मुताबिक किसी मर्द को स्कूल की चारदीवारी में रात को ठहरने की इजाज़त नहीं थी। उसने ख़ास रियायत करके उसे वहाँ ठहरने की इजाज़त दी थी। और वह आदमी था कि वहाँ रहकर इस तरह की हरकत कर रहा था! मनोरमा का ध्यान काशी को पड़ती मार की तरफ़ नहीं गया, इसी तरफ़ गया कि जो कुछ हो रहा है, उसमें स्कूल की बदनामी है और स्कूल की बदनामी का मतलब है हेड-मिस्ट्रेस की बदनामी...।

वह तेज़ी से क्वार्टर की सीढ़ियाँ चढ़ गयी। खट्-खट्-खट्-उसके सैंडिल लकड़ी के जीने पर आवाज़ कर उठे। उसे समझ नहीं आ रहा था कि वह क्या करे। काशी को बुलाकर कहे कि अजुध्या को $फौरन वहाँ से भेज दे? या अजुध्या को ही बुलाकर डाँटे और कहे कि वह सुबह होने तक वहाँ से चला जाए?

बरामदे में पैर रखते ही उसने देखा कि कुन्ती एक कोने में सहमी-सी बैठी है और डरी हुई आँखों से नीचे की तरफ़ देख रही है। जैसे उनकी माँ को पड़ती मार की चोट उसे भी लग रही हो। मनोरमा सोच नहीं सकी कि वह लडक़ी उस वक़्त उसके क्वार्टर में क्यों बैठी है।

"क्या बात है?" उसने अपना गुस्सा दबाकर पूछा।

"माँ ने कहा था आपको रोटी खिला दूँ...।" कुन्ती उसकी तरफ़ इस तरह डरी-डरी आँखों से देखने लगी जैसे उसे आशंका हो कि बहनजी अभी उसे बाँह से पकड़ लेंगी और पीटने लगेंगी।

"तू मुझे रोटी खिलाएगी?"

कुन्ती ने उसी डरे हुए भाव से सिर हिला दिया।

"तुम्हारे क्वार्टर में यह क्या हो रहा है?" मनोरमा ने ऐसे पूछा जैसे जो हो रहा था, उसके लिए कुन्ती भी कुछ हद तक उत्तरदायी हो। कुन्ती के होंठ फडक़ने लगे और दो बूँदें आँखों से नीचे बह आयीं।

"वह किस बात के लिए तेरी माँ को पीट रहा है?" मनोरमा ने फिर पूछा।

कुन्ती ने कमीज़ से आँखें पोंछीं और अपनी रुलाई दबाए हुए बोली, "उसने माँ के ट्रंक से सारे पैसे निकाल लिये हैं। माँ ने उसका हाथ रोका, तो उसे पीटने लगा।"

"इस आदमी का दिमाग़ ख़राब है!" मनोरमा गुस्से से भडक़ उठी, "अभी यहाँ से निकालकर बाहर करूँगी तो इसके होश दुरुस्त हो जाएँगे।"

कुन्ती कुछ देर सुबकती रही। फिर बोली, "कहता है, माँ ने ठेकेदारों से अलग से पैसे ले-लेकर अपने पास जमा किये हैं। इस बार उसने दो सौ में ठेका दिया है। माँ के पास अपने साठ-सत्तर रुपये थे। वे सब उसने ले लिये हैं।"

कुन्ती के भाव में कुछ ऐसी दयनीयता थी कि मनोरमा ने उसके मैले कपड़ों की चिन्ता किये बिना उसे अपने से सटा लिया।

"रोती क्यों है?" उसने उसकी पीठ सहलाते हुए कहा, "मैं अभी उससे तेरी माँ के रुपये ले दूँगी। तू चल अन्दर।"

रसोईघर में जाकर मनोरमा ने खुद कुन्ती का मुँह धो दिया और मोढ़ा लेकर बैठ गयी। कुन्ती ने प्लेट में रोटी दे दी,तो वह चुपचाप खाने लगी। वही खाना काशी ने बनाया होता, तो वह गुस्से से चिल्ला उठती। सब चपातियों की सूरतें अलग-अलग थीं, और वे आधी कच्ची और आधी जली हुई थीं। दाल के दाने पानी से अलग थे। मगर उस वक़्त वह मशीनी ढंग से रोटी के कौर तोड़ती और दाल में भिगोकर निगलती रही-उसी तरह जैसे रोज़ दफ़्तर में बैठकर काग़ज़ों पर दस्तख़त करती थीं, या अध्यापिकाओं की शिकायतें सुनकर उन्हें जवाब देती थी। कुन्ती ने बिना पूछे एक और रोटी उसकी प्लेट में डाल दी, तो वह थोड़ा चौंक गयी।

"नहीं, और नहीं चाहिए," कहते हुए उसने इस तरह हाथ बढ़ा दिया, जैसे रोटी अभी प्लेट में पहुँची न हो। फिर अनमने भाव से छोटे-छोटे कौर तोडऩे लगी।

नीचे शोर बन्द हो गया था। कुछ देर बाद गेट के खुलने और बन्द होने की आवाज़ सुनाई दी। उसने सोचा कि अजुध्या कहीं बाहर जा रहा है। कुन्ती रोटीवाला डिब्बा बन्द कर रही थी। वह उससे बोली, "नीचे जाकर अपनी माँ से कह देना कि गेट को वक़्त से ताला लगा दे। रात-भर गेट खुला न रहे।"

कुन्ती चुपचाप सिर हिलाकर काम करती रही।

"और कहना कि थोड़ी देर में ऊपर हो जाए।"

उसका स्वर फिर रूखा हो गया था। कुन्ती ने एक बार इस तरह उसकी तरफ़ देखा जैसे वह उसकी किताब का एक मुश्किल सबक हो जो बहुत कोशिश करने पर भी समझ में न आता हो। फिर सिर हिलाकर काम में लग गयी।

रात को काफ़ी देर तक काशी मनोरमा के पास बैठी रही। उसे इस बात की उतनी शिकायत नहीं थी कि अजुध्या ने उसके ट्रंक से उसके रुपये निकाल लिये, जितनी इस बात की थी कि अजुध्या तीन साल बाद आया भी तो बच्चों के लिए कुछ लेकर नहीं आया। वह उसे बताती रही कि उसकी सौत ने किसी सन्त से वशीकरण ले रखा है। तभी अजुध्या उसकी कोई बात नहीं टालता। वह जिस ज्योतिषी से पूछने गयी थी,

उसने उसे बताया था कि अभी सात साल तक वह वशीकरण नहीं टूट सकता। मगर उसने यह भी कहा था कि एक दिन ऐसा ज़रूर आएगा जब उसकी सौत के बच्चे उसके बच्चों का जूठा खाएँगे और उनके उतरे हुए कपड़े पहनेंगे। वह उसी दिन की आस पर जी रही थी।

मनोरमा उसकी बातें सुनती हुई भी नहीं सुन रही थी। उसके मन में रह-रहकर यह बात कौंध जाती थी कि सुशील की चिट्ठी नहीं आयी...उसकी चिट्ठी गये महीने के क़रीब हो गया, मगर सुशील ने जवाब नहीं दिया...। उसके बालों की एक लट उडक़र माथे पर आ गयी थी। वह हल्का-हल्का स्पर्श उसके शरीर में विचित्र-सी सिहरन भर रहा था। कुछ क्षणों के लिए वह भूल गयी कि काशी उसके सामने बैठी है और बातें कर रही है। माथे की लट हिलती तो उसे लगता कि वह एक बच्चे के कोमल रोयों को छू रही है। उसे उन दिनों की याद आयी जब सुशील की उँगलियाँ देर-देर तक उसके सिर के बालों से खेलती रहती थीं, और बार-बार उसके होंठ उसके शरीर के हर धडक़ते भाग पर झुक आते थे...। इस बार सुशील ने चिट्ठी लिखने में न जाने क्यों इतने दिन लगा दिये थे। रोज़ डाक से कितनी-कितनी चिट्ठियाँ आती थीं। मगर सारी डाक हेड मिस्ट्रेस के नाम की ही होती थी। कई दिनों से मनोरमा सचदेव के नाम कोई भी चिट्ठी नहीं आयी थी...। वह इस बार छुट्टियों के बाद आते हुए सुशील से कहकर आयी थी कि जल्दी ही उसके लिए एक गर्म कोट का कपड़ा भेजेगी। उम्मी के लिए भी एक शाल भेजने को उसने कहा था। सुशील कहीं इसलिए तो नाराज़ नहीं था कि वह दोनों में से कोई भी चीज़ नहीं भेज पायी थी?

काशी उठकर जाने लगी, तो मनोरमा को फिर अपने अकेलेपन के एहसास ने घेर लिया। देवदार के जंगल की घनी सरसराहट, दूर की घाटी में रावी के पानी पर चमकती चाँदनी और उसकी उनींदी आँखें-इन सबमें जैसे कोई अदृश्य सूत्र था, काशी बरामदे के पास पहुँच गयी तो उसने उसे वापस बुला लिया और कहा कि वह गेट को ठीक से ताला लगाकर सोए और जानकर कुन्ती को उसके पास भेज दे-आज वह वहाँ उसके पास सो रहेगी।

आधी रात तक उसे नींद नहीं आयी। खिड़की से दूर तक धुला-निखरा आकाश दिखाई देता था। हवा का ज़रा-सा झोंका आता, तो चीड़ों और देवदारों की पंक्तियाँ तरह-तरह की नृत्य-मुद्राओं में बाँहें हिलाने लगतीं। पत्तों और टहनियों पर से फिसलकर आती हवा का शब्द शरीर को इस तरह रोमांचिक करता कि शरीर में एक जड़ता-सी छा जाती। कुछ देर वह खिड़की की सिल पर सिर रखे चारपपाई पर बैठी रही। क्षण-भर के लिए आँखें मुँद जातीं, तो खिड़की की सिल सुशील की छाती का रूप ले लेती। उसे

महसूस होता कि हवा उसे दूर, बहुत दूर लिये जा रही है-चीड़ों-देवदारों के जंगल और रावी के पानी के उस तरफ़...। जब वह खिड़की के पास से हटकर चारपाई पर लेटी,तो रोशनदान से छनकर आती चाँदनी का एक चौकोर टुकड़ा साथ की चारपाई पर सोई कुन्ती के चेहरे पर पड़ रहा था। मनोरमा चौंक गयी। कुन्ती पहले कभी उसे उतनी सुन्दर नहीं लगी थी। उसके पतले-पतले होंठ आम की लाल-लाल नन्ही पत्तियों की तरह खुले थे। उसे और पास से देखने के लिए वह कुहनियों के बल उसकी चारपाई पर झुक गयी। फिर सहसा उसने उसे चूम लिया। कुन्ती सोई-सोई एक बार सिहर गयी।

मनोरमा तकिये पर सिर रखे देर तक छत की तरफ़ देखती रही। जब हल्की-हल्की नींद आँखों पर छाने लगी, तो वह गेट के खुलने और बन्द होने की आवाज़ से चौंक गयी। कुछ ही देर में काशी के क्वार्टर से फिर अजुध्या के बड़बड़ाने की आवाज़ सुनाई देने लगी। वह उस समय शराब पिये हुए था। मनोरमा के शरीर में फिर एक गुस्से की झुरझुरी उठी। उसने अच्छी तरह अपने को कम्बलों में लपेटकर उस आवाज़ को भुला देने का प्रयत्न किया। मगर नींद आ जाने पर भी वह आवाज़ उसके कानों में गूँजती रही...।

दो दिन बाद अजुध्या चला गया, तो मनोरमा ने आराम की साँस ली। उसे रह-रहकर लगता था कि किसी भी क्षण वह अपने पर काबू खो देगी, और चपरासी से धक्के दिलाकर उस आदमी को स्कूल के कम्पाउंड से निकलवा देगी। वह आदमी शक्ल से ही कमीना नज़र आता था। उसके बड़े-बड़े मैले दाँत, काले होंठ और खूँखार जानवर जैसी चुभती आँखें देखकर लगता था कि उस आदमी को ऐसी शक्ल के लिए ही उम्र-कैद की सज़ा होनी चाहिए। उसके चले जाने के बाद उसका मन काफ़ी हल्का हो गया। दफ़्तर के कुछ काम जो वह कई दिनों से टाल रही थी, उसने उसी दिन बैठकर पूरे कर दिये। उस दिन शाम की डाक से उसे सुशील की चिट्ठी भी मिल गयी।

उसने चिट्ठी दफ़्तर में नहीं खोली। स्टेनो से और चिट्ठियों का डिक्टेशन अगले दिन लेने के लिए कहकर क्वार्टर में चली आयी। चारपाई पर बैठकर उसने पेपर नाइफ़ से धीरे-धीरे लिफ़ाफ़ा खोला-जैसे उसे चोट न पहुँचाना चाहती हो। चिट्ठी दफ़्तर के काग़ज़ पर बहुत जल्दी-जल्दी लिखी गयी थी। मनोरमा को अच्छा नहीं लगा, मगर फिर भी उसने एक-एक पंक्ति उत्सुकता के साथ पढ़ी। सुशील ने लिखा था कि जल्दी ही एक जगह उम्मी की सगाई तय हो रही है। लडक़ा अच्छी नौकरी पर है, सभी ने यह रिश्ता पसन्द किया है। हो सके तो वह उम्मी की शाल जल्दी भेज दे। अब उम्मी के ब्याह के लिए भी उन लोगों को कुछ पैसे बचाकर रखने चाहिए। अन्त में उसने उसे

अपनी सेहत का ध्यान रखने को लिखा था। मधुर आलिंगन तथा अनेकानेक चुम्बनों के साथ चिट्ठी समाप्त हुई थी।

मनोरमा काफ़ी देर चिट्ठी हाथ में लिये बैठी रही। उसे पढक़र मधुर आलिंगन और अनेकानेक चुम्बनों का कुछ भी स्पर्श महसूस नहीं हुआ था। ऐसे लगा था जैसे वह एक चश्मे से पानी पीने के लिए झुकी हो और उसके होंठ गीले रेत से छूकर रह गये हों, चिट्ठी उसने ड्राअर में डाल दी और दफ़्तर में लौट गयी।

रात को खाना खाने के बाद वह चिट्ठी का जवाब लिखने बैठी। मगर क़लम हाथ में लेते ही दिमाग़ जैसे बिलकुल ख़ाली हो गया। उसे लगा कि उसके पास लिखने के लिए कुछ भी नहीं है। पहली पंक्ति लिखकर वह देर तक काग़ज़ को नाख़ून से कुरेदती रही। आख़िर बहुत सोचकर उसने कुछ पंक्तियाँ लिखीं। पढऩे पर उसे लगा कि वह चिट्ठी उन चिट्ठियों से ख़ास अलग नहीं, जो वह दफ़्तर में बैठकर क्लर्क को डिक्टेड कराया करती है। चिट्ठी में बात इतनी ही थी कि उसे इस बात का अफ़सोस है कि वह शाल और कोट का कपड़ा अभी नहीं भेज पायी। जल्दी ही वह ये दोनों चीज़ें भेज देगी। और अन्त में उसकी तरफ़ से भी मधुर आलिंगन और अनेकानेक चुम्बन...।

रात को वह देर तक सोचती रही कि कौन-कौन-सा ख़र्च कम करके वह चालीस-पचास रुपया महीना और बचा सकती है। दूध पीना बन्द कर दे? कपड़े ख़ुद धोया करे? काशी से काम छुड़ाकर रोटी ख़ुद बनाया करे? ज़्यादा ख़र्च तो काशी की वज़ह से ही होता था। वह चीज़ें माँगकर भी ले जाती थी और चुराकर भी। मगर उसने पहले भी आजमाकर देखा था कि वह स्कूल का काम करती हुई साथ अपनी रोटी नहीं बना सकती। ऐसे मौ$कों पर या तो वह दूध-डबलरोटी खाकर रह जाती थी या कुछ भी छौंक-भूनकर पेट भर लेती थी।

अगले दिन से उसने खाने-पीने में कई तरह की कटौतियाँ कर दीं। काशी से कह दिया कि दूध वह सिर्फ़ चाय के लिए ही लिया करे और दाल-सब्ज़ी में घी बहुत कम इस्तेमाल किया करे। बिस्कुट और फल भी उसने बन्द कर दिये। कुछ दिन तो बचत के उत्साह में निकल गये, मगर फिर उसे अपने स्वास्थ्य पर इन कटौतियों का असर दिखाई देने लगा। दो बार क्लास में पढ़ाते हुए उसे चक्कर आ गया। मगर उसने अपना हठ नहीं छोड़ा। उस महीने की तनख़ाह मिलने पर उसने शाल के लिए चालीस रुपये अलग निकालकर रख दिये। रुपये रखते समय उसके चेहरे का भाव ऐसा था जैसे सुशील उसके सामने खड़ा हो और वह उसे चिढ़ाना चाहती हो कि देख लो, इस तरह की

बचत से शाल और कोट के कपड़े ख़रीदे जाते हैं। उसके स्वभाव में वैसे भी कुछ चिड़चिड़ापन आ गया था। वह बात-बेबात हर एक पर झल्ला उठती थी।

एक दिन स्कूल जाने से पहले वह आईने के सामने खड़ी हुई, तो कुछ चौंक गयी। उसे लगा कि उसके चेहरे का रंग काफ़ी पीला पड़ गया है। उस दिन दफ़्तर में बैठे हुए उसके सिर में सख़्त दर्द हो आया और वह बारह बजे से पहले ही उठकर क्वार्टर में आ गयी। बरामदे में पहुँचकर उसने देखा कि काशी उसके पैरों की आवाज़ सुनते ही जल्दी से अलमारी बन्द करके चूल्हे की तरफ़ गयी है। उसने रसोईघर में जाकर अलमारी खोल दी।

घी का डिब्बा खुला पड़ा था और उसमें उँगलियों के निशान बने थे। मनोरमा ने काशी की तरफ़ देखा। उसके मुँह पर कच्चे घी की कनियाँ लगी थीं और वह ओट करके अपनी उंगलियाँ दोपट्टे से पोंछ रही थी। मनोरमा एकदम आपे से बाहर हो गयी। पास जाकर उसने उसे चोटी से पकड़ लिया।

"चोट्टी!" उसने चिल्लाकर कहा, "मैं इसीलिए सूखी सब्ज़ी खाती हूँ कि तू कच्चा घी हज़म किया करे? शरम नहीं आती कमज़ात? जा, अभी निकल जा यहाँ से। मैं आज से तेरी सूरत भी नहीं देखना चाहती।" उसने उसकी पीठ पर एक लात जमा दी, काशी औंधे मुँह गिरने को हुई, मगर अपने हाथों के सहारे सँभल गयी। पल-भर वह दर्द से आँखें मूँदे रही। फिर उसने मनोरमा के पैर पकड़ लिये। मुँह से उससे कुछ नहीं कहा गया।

"मैं तुझे चौबीस घंटे का नोटिस दे रही हूँ," मनोरमा ने पैर छुड़ाते हुए कहा, "कल इस वक़्त तक स्कूल का क्वार्टर ख़ाली हो जाना चाहिए। सुबह ही क्लर्क तेरा हिसाब कर देगा। उसके बाद तूने इस कम्पाउंड में क़दम भी रखा तो...।" और वह हटकर वहाँ से आने लगी। काशी ने बढ़कर फिर उसके पैर पकड़ लिये।

"बहनजी, पैर छू रही हूँ, माफ़ी दे दो," उसने मुश्किल से कहा। मनोरमा ने फिर भी पैर झटके से छुड़ा लिये। उसका एक पैर पीछे पड़ी चायदानी को जा लगा, चायदानी टूट गयी। बिख़रते हुए टुकड़ों की आवाज़ ने क्षण-भर के लिए दोनों को स्तब्ध कर दिया। फिर मनोरमा ने अपना निचला होंठ काटा और दनदनाती हुई वहाँ से निकल गयी। कमरे में आकर उसके माथे पर बाम लगाया और सिर-मुँह लपेटकर लेट गयी।

शाम की डाक से फिर सुशील की चिट्ठी मिली। उसमें वही सब बातें थीं। उम्मी की सगाई हो गयी थी। पिछले इतवार वे लोग उस लडक़े के साथ पिकनिक पर गये थे।

उम्मी ने एक कोने में कुछ पंक्तियाँ लिखकर ख़ुद अपनी शाल के लिए अनुरोध किया था। साथ यह भी लिखा था कि भाभी को सब लोग बहुत-बहुत याद करते हैं। पिकनिक के दिन तो उन्होंने उसे बहुत ही मिस किया।

चिट्ठी पढ़ने के बाद बड़े राउंड पर घूमने निकल गयी। मन में बहुत झुँझलाहट भर रही थी। उसे समझ नहीं आ रहा था कि वह झुँझलाहट काशी पर है, अपने पर या सुशील पर। न जाने क्यों उसे लगा कि सडक़ पर कंकड़-पत्थर पहले से कहीं ज़्यादा हैं, और वह गोल सडक़ न जाने कितनी लम्बी हो गयी है। रास्ते में दो बार उसे थककर पत्थरों पर बैठना पड़ा। घर में एक-डेढ़ फर्लांग पहले उसकी चप्पल टूट गयी। वह रास्ता बहुत मुश्किल से कटा। उसे लगा न जाने कब से वह घिसटती हुई उस गोल सडक़ पर चल रही है और आगे भी न जाने कब तक उसे इसी तरह चलते रहना है...।

गेट के पास पहुँचकर सुबह की घटना फिर उसके दिमाग़ में ताज़ा हो आयी। काशी के क्वार्टर में फिर ख़ामोशी छाई थी। मनोरमा को एक क्षण के लिए ऐसा महसूस हुआ कि काशी क्वार्टर ख़ाली करके चली गयी है, और उस बड़े कम्पाउंड में उस समय वह बिलकुल अकेली है। उसका मन सिहर गया। उसने कुन्ती को आवाज़ दी। कुन्ती लालटेन लिये अपने क्वार्टर से बाहर निकल आयी।

"तेरी माँ कहाँ है?" मनोरमा ने पूछा।

"अन्दर है," और कुन्ती ने एक बार अन्दर की तरफ़ देख लिया।

"क्या कर रही है?"

"कुछ नहीं कर रही। बैठी है।"

मनोरमा ने देखा, काशी का क्वार्टर काफ़ी ख़स्ता हालत में है। दरवाज़े का चौखट काफ़ी कमज़ोर पड़ गया था जिससे दरवाज़ा निकलकर बाहर आ जाने को था। रोज़ वह उस क्वार्टर के सामने से कई-कई बार गुज़रती थी, रोज़ ही उस दरवाज़े को देखती थी, मगर पहले कभी उसका ध्यान उस पर नहीं रुका था।

"इस क्वार्टर में काफी मरम्मत की ज़रूरत है," कहकर वह जैसे क्वार्टर का मुआइना करने के लिए अन्दर चली गयी। काशी उसे देखते ही उठकर उसके पास आ गयी। मनोरमा ने एक बार उसकी तरफ़ देख लिया मगर उससे कोई बात नहीं की। क्वार्टर की दीवारें पीली पडक़र अब स्याह होने लगी थीं। एक रोशनदान भी दीवार से निकलकर नीचे गिर आने को था। छत में चारों तरफ़ मकड़ी के जाले लगे थे जो आपस

में मिलकर एक बड़े-से चन्दोवे का रूप लिये थे। कमरे में जो थोड़ा-बहुत सामान था, वह इधर-उधर अस्त-व्यस्त पड़ा था। एक तरफ़ तीन बच्चे एक ही थाली में रोटी खा रहे थे, वही पानी जैसी दाल थी जो एक दिन कुन्ती ने उसके लिए बनाई थी और अलग-अलग सूरतों वाली ख़ुश्क रोटियाँ...। उसे देखकर बच्चों के हाथ और मुँह चलने बन्द हो गये। सबसे छोटा लडक़ा जो क़रीब चार साल का था, लोई में लिपटा एक कोने में लेटा था। उसकी आँखें मनोरमा के साथ-साथ कमरे में घूम रही थीं।

"परसू को क्या हुआ है? बीमार है?" मनोरमा ने बिना काशी की तरफ़ देखे जैसे दीवार से पूछा और बच्चे के पास चली गयी। परसू अपने पैर के अँगूठे की सीध में देखने लगा।

"इसे सूखा हो गया है," काशी ने धीरे से कहा।

मनोरमा ने बच्चे के गालों को सहलाया और उसके सिर पर हाथ फेर दिया।

"डॉक्टर को दिखाया है?" उसने पूछा।

"दिखाया था," काशी ने कहा, "उसने दस टीके बताये हैं। दो-दो रुपये का एक टीका आता है।" बोलते-बोलते उसका गला भर आया।

"लगवाए नहीं?" अब मनोरमा ने उसकी तरफ़ देखा।

"कैसे लगवाती?" काशी की आँखें ज़मीन की तरफ़ झुक गयीं, "जितने रुपये थे वे सब तो वह निकालकर ले गया था।...मैं इसे काँसे की कटोरी मलती हूँ। कहते हैं, उससे ठीक हो जाता है।"

बच्चा बिटर-बिटर उन दोनों की तरफ़ देख रहा था। मनोरमा ने एक बार फिर उसके गाल को सहला दिया और बाहर चल दी। कुन्ती दहलीज़ के पास खड़ी थी। वह रास्ता छोडक़र हट गयी।

"इस क्वार्टर में अभी सफ़ेदी होनी चाहिए," मनोरमा ने चलते-चलते कहा, "यहाँ की हवा में तो अच्छा-भला आदमी बीमार हो सकता है।"

काशी के क्वार्टर से निकलकर वह धीरे-धीरे अपने क्वार्टर का ज़ीना चढ़ी। ठक्-ठक् की आवाज़, अकेला बरामदा,कमरा। कमरे में जो चीज़ें वह बिखरी छोड़ गयी थी, वे अब करीने से रखी थीं। बीच की मेज़ पर रोटी की ट्रे ढककर रख दी गयी थी। केतली में

पानी भरकर स्टोव पर रख दिया गया था। कोट उतारकर शाल ओढ़ते हुए उसने बरामदे में पैरों की आवाज़ सुनी। काशी चुपचाप आकर दरवाज़े के पास खड़ी हो गयी।

"क्या बात है?" मनोरमा ने रू$खी आवाज़ में पूछा।

"रोटी खिलाने आयी हूँ," काशी ने धीमी ठहरी हुई आवाज़ में कहा, "चाय का पानी भी तैयार है। कहें तो पहले चाय बना दूँ।"

मनोरमा ने एक बार उसकी तरफ़ देखा और आँखें हटा लीं। काशी ने कमरे में आकर प्लग का बटन दबा दिया। पानी आवाज़ करने लगा।

मनोरमा एक किताब लेकर बैठ गयी। थोड़ी देर में काशी चाय का प्याला बनाकर उसके पास ले आयी। मनोरमा ने किताब बन्द कर दी और हाथ बढ़ाकर प्याली ले ली। काशी के होंठों पर सूखी-सी मुस्कराहट आ गयी।

"बहनजी, कभी नौकर से ग़लती हो जाए तो इतना गुस्सा नहीं करते," उसने कहा।

"रहने दे ये सब बातें," मनोरमा ने झिडक़कर कहा, "आदमी से एक बार बात कही जाए तो उसे लग जाती है। मगर तेरे जैसे लोग भी हैं जिन्हें बात कभी छूती ही नहीं। बच्चे सूखी दाल-रोटी खाकर रहते हैं और माँ को खाने को कच्चा घी चाहिए। ऐसी माँ किसी ने नहीं देखी होगी।"

काशी का चेहरा ऐसे हो गया जैसे किसी ने उसे अन्दर से चीर दिया हो। उसकी आँखों में आँसू भर आये।

"बहनजी, इन बच्चों को पालना न होता, तो मैं आज आपको जीती नज़र न आती," उसने कहा, "एक अभागा भूखे पेट से जन्मा था, वह सूखे से पड़ा है। अब दूसरा भी उसी तरह आएगा तो उसे जाने क्या रोग लगेगा!"

मनोरमा को जैसे किसी ने ऊँचे से धकेल दिया। चाय के घूँट भरते हुए भी उसके शरीर में कई ठंडी सिहरनें भर गयीं। वह पल-भर चुप रहकर काशी की तरफ़ देखती रही।

"तेरे पैर फिर भारी हैं?" उसने ऐसे पूछा जैसे उसे इस पर विश्वास ही न आ रहा हो।

काशी के चेहरे पर जो भाव आया उसमें नई ब्याहता का-सा संकोच भी था और एक हताश झुँझलाहट भी। उसने सिर हिलाया और एक ठंडी साँस लेकर दरवाज़े की तरफ़ देखने लगी। मनोरमा को पल-भर के लिए लगा कि अजुध्या उसके सामने खड़ा

मुस्करा रहा है। उसने चाय की प्याली पीकर रख दी। काशी प्याली उठाकर बाहर ले गयी। मनोरमा को लगा कि उसकी बाँहें ठंडी होती जा रही हैं। उसने शाल को पूरा खोलकर अच्छी तरह लपेट लिया। काशी बाहर से लौट आयी।

"रोटी कब खाएँगी?" उसने पूछा।

मगर मनोरमा ने जवाब देने की जगह उससे पूछ लिया, "डॉक्टर ने कहा था कि दस टीके लगवाने से बच्चा ठीक हो जाएगा?"

काशी ने ख़ामोश रहकर सिर हिलाया और दूसरी तरफ़ देखने लगी। "मैं तुझे बीस रुपये दे रही हूँ," मनोरमा ने कुरसी से उठते हुए कहा, "कल जाकर टीके ले आना।"

उसने ट्रंक से अपना बटुआ निकाला और बीस रुपये निकालकर मेज़ पर रख दिये। उसे आश्चर्य हो रहा था कि उसकी बाँहें इस कदर ठंडी क्यों हो गयी हैं। उसने बाँहों को अच्छी तरह अपने में सिकोड़ लिया।

खाना खाने के बाद वह देर तक बरामदे में कुर्सी डालकर बैठी रही। उसे महसूस हो रहा था कि उसके सारे शरीर में एक अजीब-सी सिहरन दौड़ रही है। वह ठीक से नहीं समझ पा रही थी कि वह सिहरन क्या है और क्यों शरीर के हर रोम में उसका अनुभव हो रहा है। जैसे उस सिहरन का सम्बन्ध किसी बाहरी चीज़ से न होकर उसके अपने आपसे ही था; जैसे उसी की वजह से उसे अपना-आप बिलकुल ख़ाली लग रहा था। हवा बहुत तेज़ थी और देवदार का जंगल जैसे सिर धुनता हुआ कराह रहा था।
हुआँ...हुआँ...हुआँ...हवा के झोंके उमड़ती लहरों की तरह शरीर को घेर लेते थे और शरीर उनमें बेबस-सा हो जाता था। उसने शाल को कसकर बाँहों पर लपेट लिया। लोहे का गेट हवा के धक्के खाता हुआ आवाज़ कर रहा था। पल-भर के लिए उसकी आँखें मुँद गयीं, तो उसे लगा कि अजुध्या अपने स्याह होंठ खोले उसके सामने खड़ा मुस्करा रहा है और लोहे का गेट चीरता हुआ धीरे-धीरे खुल रहा है। उसने सिहरकर आँखें खोल लीं और अपने माथे को छुआ। माथा बर्फ़ की तरह ठंडा था। वह कुर्सी से उठ खड़ी हुई। उठते हुए शाल कन्धे से उतर गया और साड़ी का पल्ला हवा में फडफ़ड़ाने लगा। बालों की कई लटें उडक़र सामने आ गयीं और उसके माथे को सहलाने लगीं।

"कुन्ती!" उसने कमज़ोर स्वर में आवाज़ दी। आवाज़ हवा के समन्दर में काग़ज़ की नाव की तरह डूब गयी।

"कुन्ती!" उसने फिर आवाज़ दी। इस बार काशी अपने क्वार्टर से बाहर निकल आयी।

"कुन्ती जाग रही हो, तो उसे मेरे पास भेज दे। आज वह यहीं सो रहेगी," कहते हुए मनोरमा को महसूस हुआ कि वह किस हद तक काशी और उसके बच्चों पर निर्भर करती है, और उन लोगों का पास होना उसके लिए कितना ज़रूरी है।

"कुन्ती सो गयी है, मगर मैं अभी उसे जगाकर भेज देती हूँ," कहकर काशी अपने क्वार्टर में जाने लगी।

"सो गयी है, तो रहने दे। जगाकर भेजने की ज़रूरत नहीं।" मनोरमा बरामदे से कमरे में आ गयी। कमरे में आकर उसने दरवाज़ा इस तरह बन्द किया जैसे हवा एक ऐसा आदमी हो जिसे वह अन्दर आने से रोकना चाहती हो। वह अपने में बहुत कमज़ोर महसूस कर रही थी। रज़ाई ओढक़र वह बिस्तर पर लेट गयी। उसकी आँखें छत की कडिय़ों पर से फिसलने लगीं। वह आँखें बन्द नहीं करना चाहती थी। जैसे उसे डर था कि आँखें बन्द करते ही अजुध्या के मुस्कराते हुए स्याह होंठ फिर सामने आ जाएँगे। वह अपना ध्यान बँटाने के लिए सोचने लगी कि सुबह सुशील को चिट्ठी में क्या-क्या लिखना है। लिख दे कि यहाँ अकेली रहकर उसे डर लगता है और वह उसके पास चली आना चाहती है? और...और भी जो इतना कुछ वह महसूस करती है, क्या वह सब उसे लिख पाएगी? लिखकर सुशील को समझा सकेगी कि उसे अपना-आप इतना ख़ाली-ख़ाली क्यों लगता है, और वह अपने इस अभाव को भरने के लिए उससे क्या चाहती है?

माथे पर आयी लटें उसने हटाई नहीं थीं। वह हल्का-हल्का स्पर्श उसकी चेतना में उतर रहा था। कुछ ही देर में वह महसूस करने लगी कि साथ ही चारपाई पर एक नन्हा-सा बच्चा सोया है, उसके नन्हे-नन्हे होंठ आम की पत्तियों की तरह खुले हैं, और उसके सिर के नरम बाल उडक़र मुँह पर आ रहे हैं। वह कुहनी के बल होकर उस बच्चे को देखती रही...और फिर जैसे उसे चूमने के लिए उस पर झुक गयी।